कुछ दिनों पहले भोपाल में सांस्कृतिक कार्यक्रम लोकरंग में देश-विदेश के सैंकड़ों बिजनों की प्रदर्शनी लगी। पेश है इस प्रदर्शनी की एक झलक।

ठहरी हुई हवा को बिजना (यानी हाथ का पंखा) ही चलाता है। चाहे वह मोर पंख का बना हो, खजूर के पत्तों का बना हो, चाहे बाँस का। उरई की सींकों को रंगीन धागों में बुनकर। फिर उसमें रंगीन कपड़े की किनारी और झालर लगाकर सुन्दर बिजने बुने जाते हैं।

औरतें अपने आँचल का बिजना बना लेती हैं। बच्चे अपनी चौसठ पेज की कॉपी का। जब कभी बिजना नहीं मिलता तो दुबली पत्रिकाएँ, अखबार, पुरानी कॉपी की जिल्द बिजना बन जाती है। गर्मी से थोड़ी-सी राहत के लिए जेब में रखा हुआ रुमाल भी तो बिजना बन जाता है। और तो और, हमारी ही कमीज़ या कुरते का आखिरी सिरा भी बिजना बन जाता है।

पशुओं में पूँछ के झौंरें (बाल) बिजना बन जाते हैं। हाथी को अपने कान चलाते हुए देखो तो लगता है जैसे उसने अपने कानों को ही बिजना बना लिया है। गाँवों में मोटी-मोटी गिलकियों को चीरकर फिर उसे चौड़ाकर सुखा लिया जाता है। इसमें रंग भरकर और सुन्दर गोटा-किनारी लगाकर भी बिजना बनाए जाते हैं।

(ध्रुव शुक्ल के बिजना लेख का एक अंश)